



छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय : बिलासपुर

एकल पीठ : माननीय श्री मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

दांडिक अपील क्रमांक 1743 वर्ष 1997

अपीलार्थीगण:

लीला बाई एवं अन्य

बनाम

प्रत्यर्थी:

मध्यप्रदेश राज्य (अब छत्तीसगढ़)

निर्णय

दिनांक 9 नवम्बर, 2012 को निर्णय हेतु सूचीबद्ध करें।

सही/-

मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव
न्यायमूर्ति

दिनांक: 8/11/2012





छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय : बिलासपुर

एकल पीठ : माननीय श्री मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

दांडिक अपील क्रमांक 1743 वर्ष 1997

अपीलार्थीगण:

लीला बाई एवं अन्य

बनाम

प्रत्यर्थी:

मध्यप्रदेश राज्य (अब छत्तीसगढ़)

उपस्थिति:

श्री अविनाश सिंह, अधिवक्ता वास्ते अपीलार्थीगण।

श्री भास्कर पयाशी, राज्य की ओर से पैनल अधिवक्ता।

निर्णय

(दिनांक 9 नवम्बर, 2012 को प्रदत्त)

1. यह अपील, दिनांक 1.8.1997 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दण्डादेश के विरुद्ध निर्देशित है, जो कि माननीय विशेष न्यायाधीश, रायपुर द्वारा विशेष प्रकरण क्रमांक 138/91 में पारित किया गया था, जिसके द्वारा तथा जिसके अंतर्गत मृत अपीलार्थी बी.एल. धरशन को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षेप में "1988 का अधिनियम") की धारा 7 तथा धारा 13(1)(d) सहपठित धारा 13(2) के अंतर्गत अपराध का दोषी ठहराया गया तथा धारा 7 के अंतर्गत 1 वर्ष का कठोर कारावास एवं ₹1000/- के अर्थदण्ड से तथा धारा 13(1)(d) सहपठित धारा 13(2) के अंतर्गत 1 वर्ष का कठोर कारावास एवं ₹1000/- के अर्थदण्ड से दण्डित किया गया। दोनों आरोपों में अर्थदण्ड का भुगतान न करने की स्थिति में 3 माह का अतिरिक्त साधारण कारावास दिया जाना निर्धारित किया गया। दोनों सजाओं को साथ-साथ भुगताये जाने का आदेश दिया गया।

1. अभियोजन की कहानी, जो कि प्रकरण के अभिलेखों एवं विचारण न्यायालय के निर्णय से प्रकट होती है, यह है कि प्रत्यर्थी प्रेमलाल वर्मा (अ.सा.2) ने अपने पिता से संबंधित भूमि के राजस्व अभिलेखों की प्रति प्राप्त करने हेतु दिनांक 25.4.1988 को तहसीलदार के समक्ष



आवेदन प्रस्तुत किया, जिस पर आदेश पारित किया गया कि अपीलार्थी/अभियुक्त को प्रतियां उपलब्ध कराने का निर्देश दिया जाए। जब प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी से संपर्क किया, तब प्रतिलिपि उपलब्ध कराने के लिए ₹100/- रिश्वत की मांग की गई। चूंकि प्रत्यर्थी रिश्वत देने के लिए तैयार नहीं था, अतः उसने सतर्कता कार्यालय में प्रदर्श पी-2 के रूप में शिकायत प्रस्तुत की। रिपोर्ट पर संज्ञान लेते हुए पंच गवाहों को बुलाया गया। प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत मुद्रा नोटों पर फिनॉलफथेलीन पाउडर लगाया गया तथा उनके नंबर नोट किए गए। पंच गवाह अर्जुन सिंह सिसोदिया (अ.सा.3) तथा संग्राम सिंह (अ.सा.4) की उपस्थिति में फिनॉलफथेलीन पाउडर की सोडियम कार्बोनेट के साथ रासायनिक प्रतिक्रिया का प्रदर्शन प्रत्यर्थी को दिखाया गया। दागी मुद्रा नोट प्रत्यर्थी की जेब में रखे गए और उसे निर्देश दिया गया कि मांग होने पर ही उन्हें अपीलार्थी को दे तथा उससे पहले उन्हें न छुए। पूर्व-ट्रेप कार्यवाही को प्रदर्श पी-3 के रूप में पूर्व-ट्रेप पंचनामा द्वारा लिखित किया गया। इसके बाद ट्रेप दल अपीलार्थी के घर गया। अभियोजन के अनुसार अपीलार्थी अपने घर से बाहर आया और जब रिश्वत राशि की मांग कर उसे स्वीकार किया, उसी समय ट्रेप दल मौके पर पहुंच गया। अभियोजन के अनुसार, यद्यपि अपीलार्थी ने रिश्वत राशि स्वीकार कर ली थी, परन्तु सतर्कता दल को देखकर उसने वही राशि जमीन पर फेंक दी। मुद्रा नोटों को पंच गवाहों में से एक द्वारा उठाया गया तथा जब्ती मेमो प्रदर्श पी-4 के अनुसार जब्त किया गया। राजस्व अभिलेखों की आपूर्ति से संबंधित दस्तावेज भी प्रदर्श पी-5 के अनुसार जब्त किए गए। अपीलार्थी तथा प्रत्यर्थी दोनों के हाथों को सोडियम कार्बोनेट के घोल में धुलवाया गया और अभियोजन के अनुसार वह गुलाबी हो गया। हाथ धोने का घोल एकत्र कर बोतलों में सीलबंद किया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श पी-7) दर्ज की गई तथा जांच की गई। सीलबंद बोतलों को न्यायिक विज्ञान प्रयोगशाला, सागर भेजा गया और न्यायिक विज्ञान प्रयोगशाला से प्राप्त रिपोर्ट (प्रदर्श पी-9) में यह दर्शाया गया कि अपीलार्थी तथा प्रत्यर्थी दोनों के हाथ धोने के नमूनों में फिनॉलफथेलीन के अंश पाए गए। मौके का नक्शा प्रदर्श पी-10 के रूप में तैयार किया गया। अभियोजन की स्वीकृति प्रदर्श पी-1 के अनुसार प्राप्त करने तथा जांच पूर्ण होने के बाद दिनांक 26.7.1991 को आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया। आरोप-पत्र के आधार पर, माननीय विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी के विरुद्ध धारा 7 तथा धारा 13(1)(d) सहपठित धारा 13(2) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अंतर्गत आरोप निर्धारित किए। अपीलार्थी ने दोष स्वीकार नहीं किया और विचारण की मांग की।

2. अपने प्रकरण को सिद्ध करने हेतु, अभियोजन ने कुल 9 गवाहों का परीक्षण किया। अपीलार्थीगण से न्यायालय द्वारा उसके विरुद्ध प्रकट हुए आपत्तिजनक साक्ष्य एवं परिस्थितियों



के संबंध में पूछताछ की गई। अपीलार्थीगण ने इनकार किया और यह प्रतिरक्षा प्रस्तुत की कि प्रत्यर्थी खसरा प्रविष्टियों की प्रति जारी करने के लिए उस पर दबाव डाल रहा था, जिसमें प्रत्यर्थी का नाम उसके पिता के नाम सहित दर्ज किया जाना था, जिसे अस्वीकार कर दिया गया। अतः अपीलार्थीगण को झूठा फँसाया गया है। अपनी प्रतिरक्षा को सिद्ध करने हेतु कि उसने रिश्वत स्वीकार नहीं की, बल्कि उसे जबरन उसके हाथों में थमाने का प्रयास किया गया, अपीलार्थीगण ने मोहित राम (ब.सा.1) को एकमात्र बचाव साक्षी के रूप में प्रस्तुत किया।

3. अभियोजन के प्रकरण पर विश्वास करते हुए और अपीलार्थीगण की प्रतिरक्षा को अस्वीकार करते हुए, माननीय विचारण न्यायालय ने अपीलार्थीगण को आरोपित अपराध का दोषी ठहराया और उसे उपर्युक्तानुसार दंडित किया, जिसके विरुद्ध यह अपील प्रस्तुत की गई है।
4. दोषसिद्धि के आक्षेपित निर्णय एवं दंडादेश की शुद्धता और वैधता को चुनौती देते हुए, अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि संपूर्ण दांडिक कार्यवाही तथा आक्षेपित दोषसिद्धि निरस्त होने योग्य है, क्योंकि विचारण न्यायालय ने 1988 के अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत आरोप निर्धारित करते समय गंभीर अवैधता की है, जबकि कथित घटना दिनांक 9.5.1988 को घटित हुई, अर्थात् 1988 के अधिनियम के लागू होने से पूर्व कथित घटना कारित हुई है। उनके अनुसार, कथित अपराध के समय पूर्ववर्ती अधिनियम अर्थात् भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (संक्षेप में “1947 का अधिनियम”) प्रभावी था और अपीलार्थीगण का 1988 के अधिनियम के अंतर्गत, जो कि कथित अपराध के पश्चात लागू हुआ, न तो विचारण किया जा सकता था और न ही दोषसिद्धि किया जा सकता था, और इस प्रकार दोषसिद्धि भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) के अंतर्गत प्रदत्त संवैधानिक संरक्षण का उल्लंघन है। अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अपीलार्थीगण को गंभीर क्षति हुई है, क्योंकि माननीय विचारण न्यायालय, यद्यपि कम दंड देने के पक्ष में था, तथापि 1988 के अधिनियम के कठोर प्रावधानों के कारण उसे धारा 7 के अंतर्गत एक वर्ष तथा धारा 13(1)(d) सहपठित धारा 13(2) के अंतर्गत एक वर्ष का दंड दिया गया, जबकि 1947 के अधिनियम में कोई न्यूनतम दंड निर्धारित नहीं है। अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि विचारण न्यायालय ने गंभीर अवैधता की है और इस प्रकार अपीलार्थीगण को गंभीर क्षति पहुँची है, क्योंकि 1988 के अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत अनुमान लगाकर अपीलार्थीगण को दोषी ठहराया गया, जबकि 1947 के अधिनियम के अंतर्गत ऐसा कोई अनुमान उपलब्ध नहीं है। अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने आगे यह भी आग्रह किया कि अभियोजन मांग को संदेह से परे सिद्ध करने में विफल रहा है, क्योंकि वर्तमान प्रकरण के तथ्यों एवं परिस्थितियों में मांग की कहानी की स्वतंत्र पुष्टि आवश्यक थी।



विशेष रूप से तब, जब स्वीकृति की कहानी की कोई स्वतंत्र पुष्टि नहीं है, मुद्रा नोट अपीलार्थीगण के आधिपत्य से बरामद नहीं हुए और प्रतिरक्षा गवाह ने यह कहा है कि अपीलार्थीगण ने प्रत्यर्थी द्वारा दी गई रिश्वत स्वीकार करने से इंकार कर दिया था। यह भी तर्क दिया गया कि अभियोजन के अनुसार भी, दागी नोट अपीलार्थीगण के आधिपत्य से बरामद नहीं हुआ, बल्कि मुद्रा नोट सड़क पर पड़े हुए मिले। अधिवक्ता ने आगे कहा कि मांग के प्रमाण के अभाव में केवल बरामदगी को दोषसिद्धि का आधार नहीं बनाया जा सकता। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि जब तक मांग सिद्ध न हो और मुद्रा नोट अपीलार्थीगण के आधिपत्य से बरामद न हों, तब तक 1988 के अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यह भी तर्क दिया गया कि अन्यथा भी, 1988 के अधिनियम के प्रावधानों का कोई प्रयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि अपराध के कथित समय पर 1947 के अधिनियम के प्रावधान लागू होते हैं। अपने तर्क के समर्थन में, अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने निम्नलिखित मामलों के निर्णयों का अवलंब लिया — **दाताराम बंजारे बनाम छत्तीसगढ़ राज्य¹, जगन एम. शेषाद्रि बनाम तमिलनाडु राज्य², एम.डब्ल्यू. मोहिउद्दीन बनाम महाराष्ट्र राज्य³, बनारसी दास बनाम हरियाणा राज्य⁴, आर.एस. कालाकापुर बनाम कर्नाटक राज्य⁵, अरुण कुमार पांडेय बनाम मध्यप्रदेश राज्य⁶।**

5. दूसरी ओर, राज्य की ओर से अधिवक्ता ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय एवं दंडादेश का समर्थन किया और तर्क दिया कि 1988 के अधिनियम की धारा 13(1)(d) तथा धारा 13(2) के अंतर्गत आरोप निर्धारण के संबंध में की गई आपत्ति निरस्त किए जाने योग्य है, तथा अंतिम दोषसिद्धि केवल इस आधार पर अवैध नहीं ठहराई जा सकती कि अपीलार्थीगण को कोई निश्चित पूर्वाग्रह हुआ हो, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने **एम.डब्ल्यू. मोहीउद्दीन (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में कहा है। आगे यह भी कहा गया कि 1947 के अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत लगाए गए आरोपों का सार तथा 1988 के अधिनियम की धारा 7 एवं 13(1)(d) के अंतर्गत समकक्ष प्रावधान समान हैं, अतः 1988 के अधिनियम की धारा 7 एवं 13(1)(d) के अंतर्गत आरोप निर्धारण से कोई पूर्वाग्रह नहीं माना जा सकता। राज्य के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि अभियोजन का मामला इस तथ्य से सिद्ध होता है कि शिकायतकर्ता के खसरा अभिलेखों से संबंधित आवेदन अपीलार्थीगण के आधिपत्य से जब्त किए गए, जिसे स्वतंत्र

¹ 2011 सी.आर.आई.एल.जे. 2013

² ए.आई.आर. 2002 एस.सी. 2399

³ (1995) 3 एस.सी.सी. 567

⁴ 2010 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 2282

⁵ 1994 सी.आर.आई.एल.जे. 2696

⁶ 2011(1) सी.जी.एल.जे. 99



अभियोजन साक्षियों अर्जुन सिंह (अ.सा.3) एवं संग्राम सिंह (अ.सा.4) द्वारा सिद्ध किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि पंच साक्षियों अर्जुन सिंह (अ.सा.3) एवं संग्राम सिंह (अ.सा.4) ने शिकायत का सत्यापन करने के पश्चात ट्रैप की व्यवस्था की, जिसमें दागी मुद्रा नोट सड़क पर पाए गए और अभिलेख पर ऐसा साक्ष्य उपलब्ध है कि जब अपीलार्थीगण ने ट्रैप दल को अपनी ओर आते देखा, तो उसने मुद्रा नोट सड़क पर फेंक दिए। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया कि एफ.एस.एल. रिपोर्ट, जिसमें अपीलार्थीगण के हाथों में फिनॉल्फथेलीन के अंश पाए गए, यह सिद्ध करने के लिए सशक्त पुष्टिकारक साक्ष्य है कि अपीलार्थीगण ने मुद्रा नोटों को संभाला था। अतः 1988 के अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत यह अनुमान उसके विरुद्ध लगाया जा सकता है कि उक्त राशि अवैध पारिश्रमिक के रूप में स्वीकार की गई थी। यह भी कहा गया कि बचाव पक्ष के साक्षी मोहित राम (ब.सा.1) का कथन विश्वसनीय नहीं है और अस्वीकार किए जाने योग्य है, प्रथम इस कारण कि वह अपीलार्थीगण का निकट सहयोगी एवं मित्र है, और द्वितीय, अपने प्रतिपरीक्षण में उसने स्वीकार किया कि उसने अपीलार्थीगण और शिकायतकर्ता के बीच लेन-देन नहीं देखा।

6. मैंने दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत परस्पर विरोधी तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेखों का अवलोकन किया है।
7. अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से यह तर्क दिया कि दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय एवं दंडादेश विधि के अनुसार टिकाऊ नहीं है, क्योंकि अपीलार्थीगण पर 1988 के अधिनियम की धारा 7 एवं 13(1)(d) सहपठित धारा 13(2) के अंतर्गत आरोप स्थापित नहीं किया जा सकता था, जबकि कथित अपराध के समय 1947 का अधिनियम लागू एवं प्रभावी था। अतः 1988 के अधिनियम के अंतर्गत की गई दोषसिद्धि, भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) के अंतर्गत प्रदत्त मौलिक अधिकार का उल्लंघन करती है।
8. इस तर्क का मूल्यांकन करने हेतु यह आवश्यक है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(1) के अंतर्गत प्रदत्त संरक्षण की प्रकृति का परीक्षण किया जाए।

भारत के संविधान का अनुच्छेद 20(1) इस प्रकार है:

“(1) किसी व्यक्ति को किसी ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध नहीं किया जाएगा, जो उस समय लागू विधि के उल्लंघन के अतिरिक्त किसी अन्य आधार पर हो, जब वह कृत्य किया गया था, और न ही उसे उस दंड से अधिक दंडित किया जाएगा जो उस समय लागू विधि के अंतर्गत दिया जा सकता था, जब अपराध किया गया था।”



9. पूर्वोक्त संवैधानिक प्रावधान विधायिका की कानून बनाने की शक्ति पर दो सीमाएँ निर्धारित करके संरक्षण प्रदान करता है। यह निषिद्ध करता है:

- (i) पूर्वप्रभावी (*ex-post facto*) आपराधिक कानून बनाना, अर्थात् किसी कार्य को पहली बार अपराध घोषित करना और फिर उस कानून को पूर्वव्यापी बनाना।
- (ii) उस दंड का आरोपण जो उस दंड से अधिक हो जो उस समय लागू कानून के अंतर्गत दिया जा सकता था जब वह कार्य किया गया था।

[कृपया देखें: जी.पी. नायर बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) ए.आई.आर. 1979 एस.सी. 602, राव शिव बहादुर सिंह एवं अन्य बनाम विन्ध्यप्रदेश राज्य (ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 394) तथा केदार नाथ बजोरिया, पुत्र रामजीदास बजोरिया बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 404)]

10. यह निर्विवाद है कि जिस समय अपराध कथित रूप से किया गया और जब एफ़.आई.आर. दर्ज हुई, उस समय 1947 का अधिनियम लागू था। इसके अतिरिक्त, भारतीय दंड संहिता की धारा 161 भी लागू थी। धारा 161 भा.द.वि. के प्रावधानों की तुलना 1988 के अधिनियम की धारा 7 तथा आगे 1947 के अधिनियम की धारा 5(1)(d), 5(2) और 1988 के अधिनियम की धारा 13(1)(d) सहपठित धारा 13(2) से करने पर स्पष्ट होता है कि संबंधित प्रावधानों के अंतर्गत अपराध का सार एक ही है। यहाँ यह मामला नहीं है कि कथित कृत्य 1988 के अधिनियम के लागू होने से पहले अपराध नहीं था। अतः 1988 के अधिनियम की धारा 7, भा.द.वि. की धारा 161 के समकक्ष (*pari materia*) है। धारा 13(1)(d) सहपठित धारा 13(2), 1947 के अधिनियम की धारा 5(1)(d) सहपठित धारा 5(2) के समान है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलार्थीगण को किसी पूर्वप्रभावी आपराधिक कानून के तहत आरोपित या दोषसिद्ध किया गया है। वर्तमान प्रकरण में अपीलार्थीगण को 1988 के अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत एक वर्ष का कठोर कारावास तथा 1000 रुपये का जुर्माना, और जुर्माना न देने की स्थिति में 3 माह का अतिरिक्त साधारण कारावास दिया गया है। इसी प्रकार, धारा 13(1)(d) सहपठित धारा 13(2) के अंतर्गत भी एक वर्ष का कठोर कारावास और 1000 रुपये का जुर्माना, तथा जुर्माना न देने पर 3 माह का साधारण कारावास दिया गया है। धारा 161 भा.द.वि. के अंतर्गत अधिकतम दंड तीन वर्ष है, जो वास्तव में दिए गए दंड से अधिक है। इसी प्रकार, 1947 के अधिनियम की धारा 5(2) के अंतर्गत अधिकतम दंड सात वर्ष है, जो दिए गए दंड से कहीं अधिक है। अतः यह भी नहीं कहा जा सकता कि दिया गया दंड उस दंड से अधिक है जो उस



समय लागू कानून के अंतर्गत दिया जा सकता था। इसलिए यह तर्क कि अपीलार्थीगण की दोषसिद्धि संविधान के अनुच्छेद 20(1) का उल्लंघन है, असफल होना चाहिए।

11. प्रस्तुत तर्कों का दूसरा पक्ष यह है कि दोषसिद्धि को इस आधार पर निरस्त किया जाना चाहिए कि अपीलार्थी पर 1988 के अधिनियम के अंतर्गत अपराध के लिए गलत रूप से आरोप निर्धारित कर उसे दोषसिद्ध किया गया। इस प्रश्न का परीक्षण किया जाना आवश्यक है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **जगन एम. शेषाद्रि (पूर्वोक्त)** के प्रकरण पर भरोसा करते हुए, अपीलार्थी के अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि आरोप 1988 के अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित नहीं किए जा सकते थे, बल्कि केवल 1947 के अधिनियम के अंतर्गत ही निर्धारित किए जा सकते थे। सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय **जगन एम. शेषाद्रि (पूर्वोक्त)** स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित करता है कि जहाँ कथित कृत्य किया गया हो और प्राथमिकी उस समय दर्ज की गई हो जब 1947 का अधिनियम प्रभाव में था, तो आरोप 1947 के अधिनियम के अंतर्गत ही निर्धारित किए जाने चाहिए, न कि 1988 के अधिनियम के अंतर्गत। किन्तु, विचारार्थ महत्वपूर्ण प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या केवल इसी आधार पर विचारण दोषपूर्ण (विकृत) हो जाता है और दोषसिद्धि को निरस्त किया जाना चाहिए। यह मुद्दा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष **एम.डब्ल्यू. मोहिउद्दीन (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में विचाराधीन आया था। उस प्रकरण में विचारण प्रारंभ में भारतीय दंड संहिता की धारा 161 सहपठित 1947 के अधिनियम की धारा 5(2) के अंतर्गत प्रारंभ हुआ था, किन्तु अंततः विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को 1988 के नए अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत दोषसिद्ध किया, और यह तर्क दिया गया कि इस आधार पर विचारण एवं दोषसिद्धि दोषपूर्ण हैं। यह तर्क सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस प्रकार अस्वीकार किया गया:

“9. हम प्रसंगवश यह उल्लेख कर सकते हैं कि विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क भी प्रस्तुत किया कि अभियुक्त का विचारण प्रारंभ में भारतीय दंड संहिता की धारा 161 सहपठित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(2) के अंतर्गत प्रारंभ हुआ था, किन्तु विचारण न्यायालय ने अंततः अभियुक्त को 1988 के नए अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत दोषसिद्ध किया। अतः विचारण दोषपूर्ण है। हमें इस तर्क में कोई सार नहीं दिखता। निःसंदेह प्रारंभ में 9-12-1983 को आरोप धारा 5(1)(d) सहपठित धारा 5(2) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 के अंतर्गत निर्धारित किए गए थे, किन्तु जब वास्तविक विचारण वर्ष 1990 में प्रारंभ हुआ, तब तत्कालीन पीठासीन न्यायाधीश ने धारा 13(1)(d)(i), (ii) सहपठित धारा 13(2) तथा धारा 7 भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अंतर्गत आरोप निर्धारित किए और विचारण



आगे बढ़ा। हमें यह नहीं मिलता कि विचारण न्यायालय में कोई आपत्ति उठाई गई थी, न ही अपीलीय न्यायालय में ऐसा कोई तर्क प्रस्तुत किया गया। अन्यथा भी, हमें यह प्रतीत नहीं होता कि अभियुक्त को कोई क्षति पहुँची है, क्योंकि आरोपों का सार दोनों अधिनियमों के प्रासंगिक प्रावधानों के अंतर्गत मूलतः समान है और किसी भी स्थिति में अपीलार्थी इस न्यायालय में पहली बार ऐसा तर्क नहीं उठा सकता, जबकि वास्तव में उसे कोई क्षति नहीं हुई है।”

12. अतः अपीलार्थी के प्रकरण में क्षति के संबंध में उसके तर्क का परीक्षण पूर्वोक्त सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **एम.डब्ल्यू. मोहिउद्दीन (पूर्वोक्त)** के प्रकाश में किया जाना आवश्यक है। विवादित निर्णय के पैरा 22 में यह पाया गया है कि दंड के प्रश्न पर अपील की सुनवाई करते समय, माननीय विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए, किन्तु निर्धारित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, विचारण न्यायालय एक वर्ष का कठोर कारावास न्यूनतम दंड के रूप में धारा 7, 1988 के अधिनियम के अंतर्गत तथा धारा 13(1)(d), 1988 के अधिनियम के अंतर्गत भी एक वर्ष का कठोर कारावास देने के लिए प्रवृत्त हुआ। 1947 के अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत कोई न्यूनतम दंड निर्धारित नहीं किया गया है और उपयुक्त प्रकरण में, यदि न्यायालय यह पाता है कि अभियुक्त 1947 के अधिनियम के अंतर्गत अपराध का दोषी है, तो कारावास के दंड के स्थान पर केवल जुर्माना भी लगाया जा सकता है। अतः यह प्रतीत होता है कि 1988 के अधिनियम की वैधानिक योजना, जिसमें दोष सिद्ध होने पर न्यूनतम दंड का प्रावधान है, के कारण यह निष्कर्ष निकाला गया कि यद्यपि उदार दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है, तथापि केवल जुर्माना लगाना उचित नहीं होगा। अतः यह वर्तमान ऐसा मामला है जिसमें अपीलार्थी को स्पष्ट रूप से क्षति पहुँची है। लगभग समान परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने **अरुण कुमार पांडेय (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में यह माना कि विचारण एवं दोषसिद्धि इस आधार पर दोषपूर्ण हैं कि अभियुक्त को क्षति पहुँची है।

13. **सी.के. दामोदरन नायर बनाम भारत संघ, (1997) 9 एस.सी.सी. 477** के प्रकरण में, सर्वोच्च न्यायालय को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(1)(d) [अब 1988 के अधिनियम की धारा 13(1)(d)] में प्रयुक्त शब्द “प्राप्त किया” के अर्थ एवं महत्व पर विचार करने का अवसर मिला, और यह कहा गया: (एस.सी.सी. पृ. 483, पैरा 12)

“12. तथापि, धारा 5(1)(d) सहपठित धारा 5(2) के अंतर्गत अपराध के संबंध में स्थिति भिन्न होगी। ऐसे अपराध के लिए अभियोजन को यह सिद्ध करना होगा कि



अभियुक्त ने भ्रष्ट या अवैध साधनों से या अन्यथा लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करते हुए कोई मूल्यवान वस्तु या धन-संबंधी लाभ 'प्राप्त' किया, और वह भी अधिनियम की धारा 4(1) के अंतर्गत वैधानिक अनुमान की सहायता के बिना, क्योंकि यह केवल धारा 5(1)(a) एवं (b) के अपराधों के लिए उपलब्ध है—न कि धारा 5(1)(c), (d) या (e) के अंतर्गत। 'प्राप्त करना' का अर्थ है किसी अनुरोध या प्रयास के परिणामस्वरूप (किसी वस्तु को) हासिल करना या प्राप्त करना (शॉर्टर ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी)। प्राप्ति के प्रकरण में पहल उस व्यक्ति में निहित होती है जो उसे प्राप्त करता है, और उस संदर्भ में उसकी ओर से की गई मांग या अनुरोध धारा 5(1)(d) के अंतर्गत अपराध के लिए एक आवश्यक शर्त होगी, जबकि भारतीय दंड संहिता की धारा 161 के अंतर्गत अपराध, जैसा कि ऊपर उल्लेखित है, 'स्वीकार' या 'प्राप्ति' के प्रमाण से स्थापित किया जा सकता है।”

पूर्वोक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, एक अन्य निर्णय **ए. सुबैर बनाम केरल राज्य, (2009) 6 एस.सी.सी. 587**, पैरा 15 (पृष्ठ 591) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

“15. विधिक स्थिति अब अनिर्णीत (*res integra*) नहीं है कि धारा 13(1)(d) के अंतर्गत अपराध के लिए प्राथमिक आवश्यक शर्त यह है कि लोक सेवक द्वारा किसी मूल्यवान वस्तु या धन-संबंधी लाभ की मांग या अनुरोध का प्रमाण हो। दूसरे शब्दों में, यदि लोक सेवक द्वारा किसी मूल्यवान वस्तु या धन-संबंधी लाभ के लिए मांग या अनुरोध का प्रमाण नहीं है, तो धारा 13(1)(d) के अंतर्गत अपराध को स्थापित नहीं माना जा सकता।”

अतः, यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि क्या दोषसिद्धि का मामला बनता है, यह देखना आवश्यक है कि क्या अभियोजन ने संदेह से परे यह सिद्ध किया है कि अभियुक्त द्वारा रिश्वत की मांग और उसकी स्वीकृति की गई थी।

- 14 रिश्वत देने वाले व्यक्ति की स्थिति तथा उसके द्वारा सरकारी सेवक के विरुद्ध दिए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय बरती जाने वाली सावधानी का परीक्षण सर्वोच्च न्यायालय ने अपने बाद के निर्णय **एम.ओ. शम्सुद्दीन बनाम केरल राज्य, (1995) 3 एस.सी.सी. 351** में किया, जिसमें निम्न प्रकार से कहा गया:



“12. अब स्वयं को रिश्वतखोरी के प्रकरण तक सीमित रखते हुए, सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि किसी लोक अधिकारी को रिश्वत देने वाला व्यक्ति, अवैध पारितोषिक स्वीकार करने के अपराध में सह-अपराधी की प्रकृति का होता है, परन्तु ऐसे मामलों में अपेक्षित पुष्टिकरण की प्रकृति को उसी कठोर मानकों के अधीन नहीं रखा जाना चाहिए, जो सामान्यतः एक स्वीकृत साक्षी के प्रकरण में लागू किए जाते हैं। यद्यपि रिश्वत देने वालों को सामान्यतः सह-अपराधियों की प्रकृति का माना जाता है, परन्तु उनमें विभिन्न प्रकार और स्तर होते हैं। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत मामलों में शिकायतकर्ता तकनीकी और विधिक दृष्टि से वह व्यक्ति होता है जो रिश्वत देता है, क्योंकि प्रत्येक ट्रेप प्रकरण में, जहाँ शिकायत दर्ज की जाती है, वहाँ एक व्यक्ति होना आवश्यक है जिसे अभियुक्त को धन देना पड़ता है, जो वास्तव में वही रिश्वत की राशि होती है जिसकी मांग की गई होती है, और ऐसे देने के बिना ट्रेप सफल नहीं हो सकता। जब वहाँ लोक सेवक द्वारा ऐसी मांग किसी ऐसे व्यक्ति से की जाती है जो अनिच्छुक है, और यदि लोक हित में वह व्यक्ति अधिकारियों के पास जाकर शिकायत करता है, तब ट्रेप के सफल होने के लिए उसे धन देना पड़ता है। एक अन्य प्रकार का रिश्वत देने वाला भी हो सकता है, जो सदैव अपना काम कराने के लिए धन देने को तैयार रहता है, और कार्य हो जाने के बाद वह शिकायत भी कर सकता है। इस स्थिति में वह अपराध के संबंध में अपराध में सहभागी होता है और इस प्रकार वह एक सह-अपराधी होता है। इस प्रकार सह-अपराधियों के भी अनेक स्तर और प्रकार होते हैं, और इसलिए उन मामलों के बीच भेद किया जा सकता है जहाँ कोई व्यक्ति अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रिश्वत देता है, और जहाँ किसी व्यक्ति को हानि या नुकसान के भय के अधीन रिश्वत देने के लिए बाध्य किया जाता है, अर्थात् दबाव के अंतर्गत। जो व्यक्ति इस श्रेणी में आता है और ट्रेप की कार्यवाही में सहभागी बनता है, वह भिन्न स्थिति में होता है, क्योंकि वह केवल उस धमकी या दबाव का शिकार होता है, जिसके अधीन उसे रखा गया था। जहाँ ऐसे साक्षी, रिश्वत देने वाले होने के कारण, प्रथम दृष्टया ‘सह-अपराधियों’ की श्रेणी में आते हैं, वहाँ न्यायालय को पहले उनकी संलिप्तता (की मात्रा पर विचार करना चाहिए और उसके बाद आवश्यकता होने पर सावधानी के नियम के रूप में पुष्टिकरण की तलाश करनी चाहिए। किसी प्रकरण में आवश्यक पुष्टिकरण की मात्रा और प्रकृति, तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भिन्न हो सकती है।”





अतः, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों से यह निष्कर्ष निकलता है कि शिकायतकर्ता के साक्ष्य का सावधानीपूर्वक परीक्षण किया जाना चाहिए, और न्यायालय को पहले उसकी संलिप्तता की मात्रा पर विचार करना चाहिए तथा आवश्यकता होने पर सावधानी के नियम के रूप में पुष्टिकरण की तलाश करनी चाहिए। किसी प्रकरण में आवश्यक पुष्टिकरण की मात्रा और प्रकृति, तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भिन्न हो सकती है।

अभियोजन द्वारा तथा बचाव पक्ष द्वारा अभिलेख पर लाई गई साक्ष्य का, अतः, परीक्षण किया जाना आवश्यक है ताकि यह ज्ञात किया जा सके कि क्या अभियोजन संदेह से परे मांग, स्वीकृति तथा बरामदगी को सिद्ध करने में सक्षम रहा है।

15 वर्तमान प्रकरण में, मांग की कहानी को अभियोजन द्वारा केवल शिकायतकर्ता प्रेमलाल (अ.सा.2) के साक्ष्य के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। वर्तमान प्रकरण की सतही परिस्थितियाँ यह दर्शाती हैं कि मुद्रा नोट अपीलार्थी के आधिपत्य से बरामद नहीं किए गए थे, बल्कि स्वयं अभियोजन का ही यह मामला है, जो स्वतंत्र अभियोजन साक्षी/पंच साक्षी अर्जुन सिंह (अ.सा.3) और संग्राम सिंह (अ.सा.4) के कथनों से सिद्ध होता है कि मुद्रा नोट सड़क पर पड़े हुए पाए गए थे। एक अन्य महत्वपूर्ण परिस्थिति यह है कि अपीलार्थी ने यह बचाव लिया है कि शिकायतकर्ता ने खसरा अभिलेखों में अपना नाम दर्ज करने तथा उसकी प्रति उपलब्ध कराने पर जोर दिया, जिसे अपीलार्थी ने अस्वीकार कर दिया। अपीलार्थी ने मोहित राम को ब.सा.1 के रूप में परीक्षित किया, जिसने यह कथन दिया कि शिकायतकर्ता ने अपने पिता के साथ संबंधित खसरा प्रविष्टियों में अपना नाम दर्ज करने तथा उसकी प्रति उपलब्ध कराने पर जोर दिया, जिसे अपीलार्थी ने अस्वीकार कर दिया और आगे, शिकायतकर्ता ने रिश्वत की पेशकश की, जिसे अस्वीकार कर दिया गया, और तत्पश्चात शिकायतकर्ता ने मुद्रा नोट अपीलार्थी के हाथों में ठूसने का प्रयास किया, जिसे अपीलार्थी ने झटक दिया।

16 यद्यपि शिकायत (प्रदर्श पी-2) में शिकायतकर्ता ने कहा है कि वह उसी दिन अपीलार्थी से मिला था, जिस दिन तहसीलदार द्वारा आदेश पारित किया गया था, अर्थात् 5.4.1988, परंतु न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में उसने यह नहीं बताया कि वह किस तिथि को पहली बार अपीलार्थी से मिला था, जब रिश्वत की मांग की गई थी। समय, तिथि तथा स्थान का उल्लेख किए बिना अस्पष्ट साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है। यदि उसके साक्ष्य के पैरा-1 को पढ़ा जाए, तो ऐसा प्रतीत होता है कि जब उसने अपीलार्थी से संपर्क किया और ₹100/- की मांग की गई, तब



वह सतर्कता कार्यालय गया और प्रदर्श पी-2 में रिपोर्ट प्रस्तुत की। किन्तु शिकायत (प्रदर्श पी-2) के अनुसार, तहसीलदार ने 25.4.1988 को आदेश पारित किया था और यह कहा गया है कि शिकायतकर्ता उसी तिथि को अपीलार्थी से मिला था और उसके पश्चात पुनः शिकायत प्रस्तुत करने की तिथि पर उससे मिला। अतः शिकायत में समय, तिथि और स्थान से संबंधित महत्वपूर्ण विवरण, प्रथम तथा द्वितीय मुलाकात के संबंध में, शिकायतकर्ता द्वारा न्यायालय में अपने साक्ष्य में उल्लेखित नहीं किए गए हैं। इसके अतिरिक्त, शिकायत (प्रदर्श पी-2) का अवलोकन, जो कि 9.5.1988 को दर्ज की गई बताई गई है, यह दर्शाता है कि शिकायतकर्ता को अपीलार्थी द्वारा अगले दिन, अर्थात् सोमवार दिनांक 9.5.1988 को बुलाया गया था। ट्रैप कार्यवाही भी 9.5.1988 को ही तैयार की गई थी। अतः शिकायत के अनुसार, शिकायतकर्ता को शिकायत प्रस्तुत करने की तिथि के अगले दिन अपीलार्थी द्वारा बुलाया गया था।

17 अतः पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, वर्तमान प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों में मांग को संदेह से परे सिद्ध करने के लिए, मांग के संबंध में स्वतंत्र पुष्टिकरण आवश्यक हो जाता है।

18 स्थल मानचित्र (प्रदर्श पी-11), जो कि आर.आई. एम.पी. राठौर (अ.सा.7) द्वारा सिद्ध किया गया है, से यह प्रदर्शित होता है कि स्वतंत्र पंच साक्षी अर्जुन सिंह (अ.सा.3) उस स्थान से लगभग 8½ मीटर दूरी पर खड़ा था, जहाँ शिकायतकर्ता और अपीलार्थी खड़े थे। मानचित्र यह भी दर्शाता है कि अन्य स्वतंत्र पंच साक्षी संग्राम सिंह ठाकुर (अ.सा.4) उस स्थान से लगभग 22 मीटर दूरी पर खड़ा था, जहाँ अपीलार्थी और शिकायतकर्ता खड़े थे। इसके अतिरिक्त, आर.डी. दीवारण (अ.सा.6) भी वहाँ खड़ा था। किन्तु न तो पंच साक्षियों और न ही पुलिस साक्षियों ने यह सिद्ध किया कि उन्होंने अपीलार्थी को शिकायतकर्ता द्वारा दी गई रिश्वत की राशि स्वीकार करते हुए देखा था, और न ही उन्होंने यह कथन दिया कि उन्होंने उनके बीच कोई बातचीत सुनी थी, जिससे मांग सिद्ध हो सके। दोनों पंच साक्षियों अर्जुन सिंह (अ.सा.3) तथा संग्राम सिंह (अ.सा.4) ने अत्यंत स्पष्ट रूप से यह कहा है कि उन्होंने अपीलार्थी और शिकायतकर्ता के बीच रिश्वत की किसी मांग के संबंध में कोई बातचीत नहीं सुनी। अतः स्वतंत्र साक्षी, जो शिकायतकर्ता और अपीलार्थी के काफी निकट खुले स्थान पर खड़े थे, मांग की कहानी के संबंध में किसी प्रकार का स्वतंत्र पुष्टिकरण प्रस्तुत नहीं कर सके। अभिलेख पर उपलब्ध पूर्वोक्त साक्ष्यों तथा ऊपर वर्णित तथ्यों और परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में, स्वतंत्र साक्ष्य द्वारा किसी भी प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य पुष्टिकरण के बिना, मांग की कहानी पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं होगा।



19 पंच गवाह अर्जुन सिंह सिसोदिया (अ.सा.3) एवं संग्राम सिंह (अ.सा.4) दोनों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि मुद्रा नोट सड़क पर पड़े हुए थे और वहीं से बरामद किए गए थे, परंतु उनमें से किसी ने यह नहीं कहा कि उन्होंने शिकायतकर्ता को आरोपी को मुद्रा नोट देते हुए या आरोपी को स्वेच्छा से उन्हें स्वीकार करते हुए देखा। दोनों पंच गवाहों ने यह भी नहीं कहा कि आरोपी ने रिश्वत की राशि स्वीकार करने के बाद ट्रैप पार्टी एवं पंच गवाह को आते देख उसे फेंक दिया। यह देखते हुए कि पंच गवाह अर्जुन सिंह (अ.सा.3) मात्र 8½ मीटर की दूरी पर खड़ा था तथा स्थल का सीधा दृश्य अवरुद्ध नहीं था, यह अत्यंत असामान्य है कि मुद्रा नोट देने और लेने की कोई भी घटना पंच गवाह द्वारा देखी न गई हो।

20 यद्यपि राज्य की ओर से अधिवक्ता ने संग्राम सिंह ठाकुर (अ.सा.4) एवं आर.डी. दीवान (अ.सा.6) के साक्ष्य की ओर ध्यान आकर्षित किया और कहा कि शिकायतकर्ता ने उन्हें बताया था कि आरोपी ने रिश्वत की राशि सड़क पर फेंक दी, परंतु यह तथ्य किसी भी पंच गवाह अर्जुन सिंह (अ.सा.3) एवं संग्राम सिंह (अ.सा.4) द्वारा नहीं कहा गया। इससे स्पष्ट है कि जब पंच गवाह मौके पर पहुँचे, तब शिकायतकर्ता ने यह नहीं कहा कि आरोपी ने नोट सड़क पर फेंके। अतः अभियोजन की यह कहानी कि आरोपी ने रिश्वत स्वीकार की और बाद में सड़क पर फेंक दी, अत्यंत संदिग्ध हो जाती है। इस प्रकार, सड़क से मुद्रा नोट की बरामदगी और आरोपी के आधिपत्य से नहीं होना, अभियोजन की कहानी को संदिग्ध बनाता है।

21 आरोपी का बचाव यह है कि शिकायतकर्ता उसके पास आया और आग्रह किया कि उसके नाम को भी खसरा अभिलेखों में उसके पिता के नाम के साथ दर्ज किया जाए, जिस पर आरोपी ने असमर्थता व्यक्त की। उसने यह भी कहा कि शिकायतकर्ता बैंक से ऋण लेना चाहता था, इसलिए यह आग्रह किया गया। मोहीत राम (ब.सा.1) ने अपने साक्ष्य में कहा कि शिकायतकर्ता ने अपने नाम से दस्तावेज तैयार करने का अनुरोध किया था, जबकि आरोपी ने कहा कि संपत्ति उसके पिता के नाम पर दर्ज है और उसकी प्रति उसके नाम से जारी हो सकती है, शिकायतकर्ता का नाम जोड़कर नहीं। उस समय शिकायतकर्ता प्रेमलाल आरोपी को घर के बाहर ले गया और पेड़ के पास जाकर बातचीत करने लगा। उसी दौरान शिकायतकर्ता ने आरोपी से पैसे लेने और उसके पक्ष में दस्तावेज तैयार करने को कहा, जिसे आरोपी ने पुनः अस्वीकार कर दिया। इसके बाद शिकायतकर्ता ने पैसे देने का प्रयास किया, जिसे आरोपी ने अस्वीकार कर दिया और उसी समय ट्रैप टीम पहुँच गई। जिरह में उसकी विश्वसनीयता पर यह कहकर प्रश्न उठाया गया कि वह आरोपी का परिचित है, परंतु उसने स्वीकार किया कि वह भिन्न जाति का है। उसने यह भी स्वीकार किया कि कमरे से बाहर जाने के बाद शिकायतकर्ता और



आरोपी के बीच क्या बातचीत हुई, यह उसे ज्ञात नहीं। शिकायतकर्ता द्वारा अपने नाम दर्ज कराने के आग्रह और आरोपी द्वारा इंकार करने का यह भाग विवादित नहीं है।

22 इस न्यायालय ने **मध्य प्रदेश राज्य (अब छत्तीसगढ़) लोकायुक्त के माध्यम से बनाम एल. के. साहू** के प्रकरण में यह प्रतिपादित किया है कि जब अभियुक्त अपने बचाव में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर निर्भर करता है, तब—

15. -----xxxx-----

“यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यद्यपि अभियोजन पर आरोप सिद्ध करने का भार संदेह से परे होता है, परंतु अभियुक्त के बचाव की सत्यता की जांच के लिए उसी स्तर का प्रमाण आवश्यक नहीं है। अभियुक्त के बचाव की संभावना या स्पष्टीकरण को ‘संदेह से परे’ के मानदंड पर नहीं, बल्कि ‘संभावनाओं के प्राधान्य’ के आधार पर परखा जाता है।”

16. **अहेर राजा खीमा बनाम सौराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर. 1956 एस.सी. 217** में यह कहा गया है कि यदि अभियुक्त अपने आचरण का युक्तिसंगत स्पष्टीकरण देता है, तो भले ही वह उसे पूर्णतः सिद्ध न कर सके, उसे सामान्यतः स्वीकार किया जाना चाहिए, जब तक परिस्थितियाँ उसे असत्य न दर्शाएँ। रिश्वत के मामलों में, यदि अभियोजन यह सिद्ध कर देता है कि आरोपी ने राशि स्वीकार की और वह वैध पारिश्रमिक नहीं थी, तो उसके विरुद्ध अनुमान उत्पन्न होता है। परंतु आरोपी संभावनाओं के प्राधान्य के आधार पर इस भार से मुक्त हो सकता है, जैसा कि **महेश प्रसाद गुप्ता बनाम राजस्थान राज्य (ए.आई.आर. 1974 एस.सी. 773)** तथा **त्रिलोक चंद जैन बनाम दिल्ली राज्य (1979 एस.सी. 666)** में कहा गया है। सामान्यतः रिश्वत एवं त्रैप मामलों में साक्ष्य के मूल्यांकन के सिद्धांत इस प्रकार हैं:

“(a) अभियोजन का भार अभियोजन पर ही रहता है, चाहे मामला त्रैप या रिश्वत का ही क्यों न हो; यह भार भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 4 से स्थानांतरित नहीं होता। (b) धारा 4 का सीमित उपयोग केवल उद्देश्य के अनुमान हेतु है, जब यह सिद्ध हो जाए कि धन आरोपी द्वारा प्राप्त या स्वीकार किया गया था। (c) अनुमान लागू होने पर भी, धन का स्वीकार या प्राप्ति स्वेच्छा एवं सचेत मन से होना चाहिए। (d) अभियुक्त एक संभावित स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर इस अनुमान का खंडन कर



सकता है। (e) अभियुक्त को इसे संदेह से परे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं, केवल संभावनाओं के प्राधान्य से पर्याप्त है। (f) ट्रेप गवाहों को स्वतः सह-अभियुक्त (accomplice) नहीं माना जाएगा, परंतु न्यायालय स्वतंत्र पुष्टि पर जोर दे सकता है। उदाहरणार्थ, **पन्नालाल दामोदर राठी बनाम महाराष्ट्र राज्य (ए.आई.आर. 1979 एस.सी. 1191)** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि शिकायतकर्ता के साक्ष्य की पुष्टि आवश्यक है। भारतीय दंड संहिता की धारा 165-A लागू होने के बाद, रिश्वत देने वाला भी अपराधी माना जाता है, अतः उसे सह-अभियुक्त से बेहतर स्थिति में नहीं रखा जा सकता और उसके साक्ष्य की पुष्टि आवश्यक है।”

17. पुंजाबराव बनाम महाराष्ट्र राज्य (ए.आई.आर. 2002 एस.सी. 486) में यह स्थापित विधिक सिद्धांत है कि— सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यदि आरोपी कथित राशि प्राप्त करने का युक्तिसंगत स्पष्टीकरण देता है, तो उसे अपना बचाव संदेह से परे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि वह संभावनाओं के प्राधान्य से अपना बचाव स्थापित कर सकता है। **टी. सुब्रमणियम बनाम तमिलनाडु राज्य (2006 (1) क्राइम्स 75)** में यह कहा गया कि यदि राशि प्राप्त करने का कारण स्पष्ट और संभाव्य है, तो आरोपी को दोषमुक्त किया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहा है कि जहाँ अभियुक्त कथित राशि की प्राप्ति के संबंध में कोई स्पष्टीकरण देता है, वहाँ उससे यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह अपने बचाव को संदेह से परे सिद्ध करे, बल्कि वह संभावनाओं के प्राबल्य के आधार पर भी उसे स्थापित कर सकता है। इसी प्रकार, **टी. सुब्रमणियम बनाम तमिलनाडु राज्य (2006 (1) क्राइम्स 75)** के प्रकरण में यह निर्णय दिया गया कि यदि राशि प्राप्त करने का कारण स्पष्ट कर दिया गया हो और वह स्पष्टीकरण संभावित तथा तर्कसंगत हो, तो अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाना चाहिए।

23. अतः विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या अभियुक्त का बचाव, संभावनाओं के प्राबल्य की कसौटी पर परखा जाने पर, इतना संभावित और विश्वसनीय है कि अभियोजन का मामला संदिग्ध हो जाए और अभियुक्त को संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त किया जाना उचित हो।

24. पूर्वोक्त सिद्धांतों को लागू करने पर, अपीलार्थी का बचाव, संभावनाओं के प्राबल्य की कसौटी पर परखा जाने पर, संभावित और विश्वसनीय प्रतीत होता है तथा अभियोजन की कहानी में और अधिक संध लगाता है।



25. फिनॉल्फथेलिन परीक्षण के सकारात्मक परिणाम के संबंध में बहुत अधिक जोर दिया गया है। इस संदर्भ में इतना कहना पर्याप्त है कि जब बचाव पक्ष के गवाहों के साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि शिकायतकर्ता ने रिश्वत की राशि को अपीलार्थी के हाथों में जबरन थमाने का प्रयास किया और अपीलार्थी ने उसे स्वीकार करने से इंकार कर दिया, तब केवल एफएसएल की सकारात्मक रिपोर्ट के आधार पर जबकि मांग और स्वीकार किए जाने का कोई प्रमाण नहीं है तथा कथित दागी मुद्रा अपीलार्थी के आधिपत्य से नहीं बल्कि सड़क से बरामद की गई है अपीलार्थी को दोषसिद्ध करना असुरक्षित होगा।

26. परिणामस्वरूप, अभियोजन अपना मामला संदेह से परे सिद्ध करने में विफल रहा है। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने यह भी पाया है कि अभियुक्त/अपीलार्थी को गंभीर पूर्वाग्रह पहुँचा है, क्योंकि आरोप 1988 के अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत तय किए गए, जबकि अपराध के समय 1947 का अधिनियम लागू था और 1988 का अधिनियम तब तक प्रभाव में भी नहीं आया था।

27. अंतिम विश्लेषण में, अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय तथा दंडादेश विधिक की दृष्टि से अस्थिर है। अतः उसे निरस्त किया जाता है।

28. परिणामस्वरूप, अपील स्वीकार की जाती है।

29. अपील की लंबित अवस्था के दौरान अपीलार्थी बी.एल. दर्शन का निधन हो गया और अपील उनके विधिक प्रतिनिधियों द्वारा अभियोजित की गई, जिन्हें अपील चलाने की अनुमति दी गई थी। अतः इस प्रकरण में कोई और आदेश पारित किए जाने की आवश्यकता नहीं है।

हस्ताक्षर/

मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव
न्यायमूर्ति

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

Translated By RANJAN GUPTA, ADVOCATE